लगातार बढ़ती आर्थिक असमानता

इसका हश्र क्या होगा?

हमारे देश में ग़रीबी रेखा तो तय कर दी गई है, पर अमीरी रेखा तय नहीं की गई है। संभवत: दुनिया भर में कहीं ऐसा नहीं किया गया है। जब दुनिया में रूस में पहली समाजवादी क्रांति हुई थी तो वहां यह तय किया गया था कि अधिकतम और न्यूनतम वेतन का अनुपात क्या रहेगा और यह कम से कम था। पर जब सत्ता वहां नौकरशाहों के हाथों में आ गई तो न्यूनतम और उच्चतम वेतन में अनुपात बढ़ता गया और एक समय तो ऐसा आया कि यह दुनिया में सबसे ज़्यादा हो गया।

देखा जाये तो व्यक्ति चाहे कोई भी काम क्यों न करता हो तो उसकी मूलभूत जरूरतें प्राय: समान ही होती हैं। भोजन, कपड़े और आवास की आवश्यकता सभी को होती है। पर 'छोटा' अथवा 'कम महत्त्वपूर्ण' काम करने वाले लोगों की आय इतनी कम होती है कि वे अपनी मूलभूत जरूरतों को भी ढंग से पूरा नहीं कर पाते। आधा पेट जैसे-तैसे खाना, घटिया और कम कपड़ों में काम चलाना, असुविधापूर्ण मकानों अथवा झुग्गी बस्तियों में रह कर किसी तरह गुजारा करना उनकी नियति होती है। अल्प आय वर्ग का होने के कारण वे न तो अपने बच्चों को ढंग से शिक्षा दिला पाते हैं और न ही बीमार पड़ने पर अपनी अथवा अपने परिवार वालों की सही चिकित्सा करा पाते हैं। मजबूर होकर वे झोलाछाप चिकित्सकों से इलाज कराने पर मजबूर होते हैं और वो भी तब जब इलाज कराये बिना किसी तरह काम नहीं चलने वाला हो। वे धूप में जल कर, जाड़े में ठिठुर कर मेहनत-मशक्कत भरा काम करते हैं और जिंदगी भर अभावों को झेलते हुए एक दिन इस दुनिया को अलविदा कह देते हैं। भीषण ग़रीबी के कारण कई बार तो ऐसा भी होता है कि उनके परिवार के पास उनके अंतिम संस्कार के लिए भी पैसे नहीं होते तो वे कफ़न आदि का इंतज़ाम भी कर्ज लेकर ही करते हैं। ऐसी स्थिति उन लोगों के साथ आती है जो प्राइवेट फैक्ट्रियों, वर्कशॉपों और फ़र्मों आदि में ठेके पर काम करते हैं। अगर वे उन जगहों पर बीस वर्ष तक काम करते रहें अथवा तीस वर्षों तक, उनके वेतन में मामूली वृद्धि ही होती है और वह भी जब मालिक की मर्जी हो। ऐसा कोई कानून नहीं है कि वह नियोक्ता को इस बात के लिए बाध्य कर सके कि वह अपने कर्मचारियों की वार्षिक या एक निश्चित समय के अंतराल पर वेतन-वृद्धि करे और उन्हें बोनस आदि दे। स्थिति तो यह होती है कि दो-तीन दशकों की लंबी सेवा करने के बाद जब कर्मचारी रिटायर होने लगता है तो भी उसे कोई सुविधा नहीं मिलती। वह जिस हालत में पहले कंपनी ज्वाइन करने आता है, रिटायरमेंट के बाद भी उसकी हालत ठीक वैसी ही होती है। सरकारी अथवा गैरसरकारी स्तर पर उसके लिए सामाजिक सुरक्षा जैसी कोई चीज नहीं है। यह असंगठित क्षेत्र के लिए सच है। जहां तक बड़े कारखानों में स्थाई कर्मियों का सवाल है, उन्हें वेतन-वृद्धि, बोनस और सेवा-निवृति लाभ तो मिल जाता है, पर आज ठेका प्रथा ने इतना जोर पकड़ लिया है कि अधिकांश काम ठेका मज़दूरों से ही कराया जाने लगा है। यह प्रवृति इसी तरह बढ़ती रही तो वह दिन दूर नहीं जब अधिकांश कारखानों में ठेका कर्मियों का बोलबाला रहेगा। कारखानों को तो छोड़ दें अब तो सरकारी विभागों तक में ठेका पर कर्मियों को बहाल किया जा रहा है।

> **हर छोटे-बड़े वर्कशॉप चलाने वाले और छोटी-बड़ी फैक्ट्रियां चलाने वालों को मज़दूरों को वह न्यूनतम वेतन देना जरूरी किया जाना चाहिए जो सरकार दे रही है। इसके अलावा मज़दूरों के रहने के लिए ढंग के निवास का प्रबंध किया जाना चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया जाता तो बहुसंख्यक आबादी के शोषण की कीमत पर चंद लोग हर तरह के मौज-मजे उड़ाते रहेंगे और सरकार भी उनकी हर संभव सहायता करती रहेगी।**

दूसरी तरफ, सरकारी कर्मियों के वेतन में लगातार भारी वृद्धि हो रही है। उच्च पदस्थ अधिकारियों के साथ ही निम्न कर्मचारियों के वेतन में भी। इसके लिए बढ़ती महंगाई को बहाना बनाया जाता है। पर महंगाई तो सबों के लिए समान रूप से बढ़ती है। सरकारी अफ़सरों और कर्मचारियों को हर तरह की सुविधायें हासिल हैं। सेवा मुक्ति के बाद पेंशन और तरह-तरह के भत्ते। इसलिए आज हर कोई सरकारी नौकरी ही पाना चाहता है। सरकारी नौकरी में जिम्मेवारी नाममात्र की होती है और वेतन एवं अन्य सुविधयें भरपूर। रिश्वतखोरी एवं अन्य नाजायज स्रोतों से भी आमदनी की पूरी गुंजाइश होती है। इसलिए महंगाई बढ़ने का इनके जीवन-स्तर पर कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

सरकार अपने अफ़सरों और कर्मचारियों के वेतन-भत्तों में बेहिसाब बढ़ोत्तरी इसलिए करती चली जाती है क्योंकि सरकार के शोषण तंत्र को चलाने का काम ये ही करते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि ये हर तरह से संतुष्ट रहें। बाकी लोग भूखों मरें, इससे सरकार को कोई मतलब नहीं है। छठे वेतन आयोग के अनुसार सरकार ने अपने अफ़सरों और कर्मचारियों की जितनी ज़्यादा वेतन-वृद्धि की है, वह हर दृष्टि से नाजायज है। आज देश की 80 प्रतिशत आबादी जहां 20 रुपये रोजाना आमदनी पर जानवरों की तरह जीवन बसर करने पर मजबूर है, उनके हित में कोई कदम न उठा कर सरकार ने अपने 'पालतू' सेवकों के हितों का जैसा ध्यान रखा है उससे समाज में असमानता और असंतोष की लहर और भी ज़्यादा व्याप्त होगी।

आज समाज के वंचित वर्गों के लिए सहानुभूति रखने वाले लोगों की भारी कमी होती चली जा रही है। वे लोग जो अपने आप को वंचित वर्गों के हितैषी होने का दावा करते हैं, वे भी मंदिर में दिया जलाने के पहले अपने घर में दिया जलाने में यकीन रखते हैं। जनहितैषी ऐसे बुद्धिजीवियों की कोई कमी नहीं है जो जनहित की बातें वे तभी करते हैं जब उनके अपने पेट अच्छी तरह भरे हुए हों। ग़रीबों और मज़दूरों के बारे में यह मान लिया जाता है कि इनहें भूखे पेट रह कर कठिन काम करने की आदत है। पर वे इस बात को भूल जाते हैं कि वे भी मनुष्य हैं। ऐसे 'जनहितैषी' बुद्धिजीवियों की कोई कमी नहीं है जो अपने विदेशी कुत्तों को पालने-पोसने पर इतना ज़्यादा खर्चा करते हैं जितना एक मज़दूर की तनख्वाह भी नहीं होती।

आज संघर्ष का एजेंडा यह होना चाहिए कि गैरसरकारी और सरकारी स्तर पर ठेकेदारी प्रथा का पूरी तरह से खत्मा किया जाना चाहिए। सरकार ने न्यूनतम मज़दूरी की जो दर निर्धारित कर रखी है, उसे बढ़ा कर कम से कम एक सरकारी चपरासी अथवा पुलिस कांस्टेबल के बराबर किया जाना चाहिए। यही नहीं, जो लोग दुकानों और प्राइवेट दफ़्तरों में काम करते हैं, उनका वेतनमान भी सरकार द्वारा दिये जा रहे वेतनमान के बराबर होना चाहिए। हर छोटे-बड़े वर्कशॉप चलाने वाले और छोटी-बड़ी फैक्ट्रियां चलाने वालों को मज़दूरों को वह न्यूनतम वेतन देना जरूरी किया जाना चाहिए जो सरकार दे रही है। इसके अलावा मज़दूरों के रहने के लिए ढंग के निवास का प्रबंध किया जाना चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया जाता तो बहुसंख्यक आबादी के शोषण की कीमत पर चंद लोग हर तरह के मौज-मजे उड़ाते रहेंगे और सरकार भी उनकी हर संभव सहायता करती रहेगी।

-मनोज

पाक प्रायोजित आतंकवाद : आधी हकीकत, आधा फसाना

भारत 'पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद' के ख़तरे से जूझ रहा है। आतंकवाद का यह ख़तरा सिर्फ़ भारत को ही नहीं, उसके आका अमेरिका को भी कम नहीं है। भारत में तो आंतरिक सुरक्षा के लिए आतंकवाद से भी बड़ा ख़तरा सरकार ने माओवादी हिंसा को घोषित कर रखा है, पर अमेरिका जहां इस तरह की कोई चुनौती नहीं है, सबसे बड़ा ख़तरा आतंकवाद ही बना हुआ है। इसके अलावा अमेरिका के सहयोगी यूरोपीय देशों को भी आतंकवाद का ख़तरा है। यानी आज आतंकवाद एक देश की सीमा में घिरा न हो कर एक ग्लोबल परिघटना बन चुका है। अमेरिका में भी जो आतंकवादी पकड़े जाते हैं, उनके संबंध पाकिस्तान से साबित होते रहे हैं। पर अमेरिका ने पाकिस्तान को भारत की तरह पाकिस्तान को शत्रु राष्ट्र घोषित नहीं कर रखा है, बल्कि वह उसके द्वारा संरक्षित राष्ट्रों में है। बल्कि सच्चाई तो यह है कि अब जब उपनिवेशवाद का ज़माना समाप्त हो चुका है, पाकिस्तान (एशिया में) अमेरिका का सबसे बड़ा उपनिवेश बना हुआ है। अमेरिका के लिए उसकी राष्ट्रीय संप्रभुता कोई मायने नहीं रखती। यही कारण है कि वह पाकिस्तान की सीमा में आतंकवादियों को खत्म करने के नाम पर मानवरहित वायुयानों से लगातार हमले करता रहता है जिसमें वहां के निर्दोष लोग़ मारे जाते हैं। लेकिन इसके खिलाफ़ पाकिस्तान चूं भी नहीं कर सकता, क्योंकि यह अमेरिका ही है जो किसी भी हाल में पाकिस्तान को अरबों डालर की सहायता प्रदान करता रहता है, भले ही आतंकवाद के खिलाफ़ लड़ने के नाम पर ही क्यों नहीं। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि पाकिस्तान आज से नहीं, अपने जन्म काल से ही धर्म के नाम पर हिंसा की राजनीति करने वालों का सबसे बड़ा अखाड़ा बना हुआ है। ऐसा कर पाने में पहले वह इंगलैंड और अब अमेरिका के सहयोग से ही वह समर्थ हो पाया। पाकिस्तान के शासकों को अपने देश की भूखी-नंगी विशाल आबादी की कोई परवाह नहीं है, उन्हें तो बस किसी भी हाल में अपने साम्राज्यवादी आकाओं के तलवे चाटने का काम करते रहना है ताकि वे अपने देश को लूट-लूट कर वे अपनी तिजोरियां भरते रहें। अब भारत के संबंध में भी ऐसा ही कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भूलना नहीं होगा कि भारत में आतंकवादी हिंसा का शिकार हो कर जितने लोग़ मर जाते हैं, उससे कई गुणा ज़्यादा लोग़ भूख और उससे होने वाले कुपोषण के कारण असमय काल के गाल में समा जाते हैं। लाखों की संख्या में दुधमुंहे बच्चे पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाने के कारण मर जाते हैं। देश भले ही इक्कीसवीं सदी में पहुंच गया हो, पर भूख से होने वाली मौतों का सिलसिला थमा नहीं है। इस देश की 77 प्रतिशत आबादी महज 20 रुपये की रोज़ाना आमदनी पर एकबारगी तो नहीं, पर तिल-तिल कर भूख से मरने को मजबूर है। इसके लिए कौन जिम्मेदार है? इसके लिए इस देश की व्यवस्था जिम्मेदार है जिसमें दस प्रतिशत आबादी की ऐय्याशी के लिए पूरा पांच और सात-सितारा इंतज़ाम है, पर बाकी कमरतोड़ मेहनत करने वाली आबादी के बारे में सोचने वाला कोई नहीं है। हालत तो यह है कि मजबूरी में जंगलों और पहाड़ों में रहने वाले आदिवासी पेड़ों के पत्ते चबाने लगते हैं, लेकिन बड़े-बड़े विदेशी साम्राज्यवादी निगमों द्वारा खनिजों की लूट के लिए उनसे जंगल भी खाली कराने की योजना पर सरकार काम करने लगती है। जब आदिवासियों के पक्ष में वे लोग़ सामने आते हैं जिन्होंने सरकार के अन्याय और उसकी हिंसा से बचने के लिए हथियार उठा लिए हैं, क्योंकि इसके अलावा और कोई दूसरा विकल्प उनके सामने नहीं रह गया है तो सरकार उनके खिलाफ़ युद्ध छेड़ने की घोषणा कर देती है, और उसे आतंकवाद से भी बड़ा ख़तरा घोषित कर देती है। यह भी अमेरिका एवं अन्य साम्राज्यवादी देशों के इशारे पर जिनके हित जंगलों और पहाड़ों से आदिवासियों को खदेड़े जाने में हैं। जहां तक 'पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद' का सवाल है, यह देश की आम जनता को धोखा देने और उसे भुलावे में रखने का बड़ा कामयाब नुस्खा है। इससे सरकारें जनता को बताती रहती हैं कि उसके 'असली दुश्मन' कौन हैं और कैसे वह उनसे उनकी रक्षा के लिए लड़ रही है। पाकिस्तानी आतंकवाद यहां के शासकों के लिए एक बहुत बड़ा सुरक्षा कवच है। यह साम्राज्यवादियों के लिए भी एक सुरक्षा कवच की ही भूमिका निभाता है। पाकिस्तान का निर्माण साम्राज्यवादियों ने इसीलिए करवाया था कि वह 'बिल्लियों' के झगड़े में 'बंदर' की भूमिका निभा कर 'रोटी का टुकड़ा' हड़पता रहे। अपनी इस चाल में वह कामयाब रहा और आज भी कामयाब है। पाकिस्तान और आतंकवाद उसके लिए ऐसे औज़ार हैं जिसके माध्यम से वह भारत को अपने काबू में रखता है। लेकिन खुद अमेरिका और अन्य साम्राज्यवादी पिछलगू आतंकवाद पर काबू पाने में अक्षम ही साबित हो रहे हैं अथवा वे आतंकवाद पर काबू पाना ही नहीं चाहते। आतंकवाद अगर मिट गया तो उन्हें पाकिस्तान और अफगानिस्तान जैसे देशों पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने में मुश्किलें आयेंगी। इन देशों पर नियंत्रण बनाये रखना हर हाल में दक्षिण एशिया पर अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए अमेरिका के लिए जरूरी है। दक्षिण एशिया अमेरिका की लूट का एक बड़ा अड्डा है। उसकी चरमरा रही अर्थव्यवस्था को नवजीवन अब भारत की लूट से ही मिल सकता है।

कोई भी यह सोच सकता है कि अपने आप को सर्वशक्तिमान कहने वाले अमेरिका के लिए एक दशक से भी ज़्यादा समय के दौरान ओसामा बिन लादेन को पकड़ने में सफलता क्यों नहीं मिली? उसके संरक्षण और सैन्य ताकत के बल पर पल रहे अफगानिस्तान के शासक करजई को तालिबानियों को कुचलने में सफलता क्यों नहीं मिली? क्यों करजई अब तालिबानियों से बातचीत का रास्ता अपनाना चाहता है? और उसके द्वारा ऐसा किये जाने पर भी अमेरिका खामोश क्यों है? क्या इस बात को सोचा जा जा सकता है कि करजई अपना एक भी कदम बिना अमेरिकी सलाह अथवा निर्देश के उठाता है? लेकिन करजई की सत्ता तो कहते हैं कि उसके महल के बाहर नहीं चलती। फिर करजई से अमेरिका को इतना मोह क्यों है? अमेरिका क्या करे, अफगानिस्तान में करजई उसका एकमात्र मोहरा है। बाकी आतंकवादी तालिबान अफगानिस्तान में कहर बरपाता रहे, वहां की जनता जानवरों की तरह जीवन व्यतीत करने पर विवश हो, उससे उसका क्या लेना-देना? उसे तो मतलब सिर्फ और सिर्फ लूट से है। इसके लिए अगर आतंकवादी भी उसके आड़े नहीं आते तो वह एक हद तक समझौतापरस्त रवैया अपनाने के लिए तैयार हो जाता है। उदाहरण के लिए इराक को भी देखा जा सकता है। अमेरिका द्वारा सद्दाम हुसैन का तख्ता पलटवाये जाने और उसे फांसी पर लटकाने के बाद अब तक इराक में अमेरिका के नेतृत्व में अराजकता का साम्राज्य कायम है। अमेरिका को आम इराकियों की फिक्र क्यों हो जिनका जीवन नारकीय हो चुका है, उसे तो मतलब है सिर्फ वहां की तेल संपदा के दोहन से जिसमें वह लगातार लगा हुआ है। जब वह पूरी तरह से निचोड़ लेगा तो उसे अरक्षित छोड़ कर चल देगा। कहने का मतलब यह है कि जैसा कि समझा जाता है कि अमेरिका कट्टरपंथी आतंकवाद के पूरी तरह विरुद्ध है तो यह आधी हकीकत और आधा फसाना ही होगा। अगर कट्टरपंथी आतंकवाद से अमेरिका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कुछ भी हित सधता है तो वह उसके खिलाफ़ नहीं हो सकता। अमेरिका से भला अच्छी तरह कौन जानता होगा कि पाकिस्तान और अफगानिस्तान में ही कट्टरपंथी आतंकवाद की जड़ें पनपती हैं। वह यह भी जानता है कि पाकिस्तानी ख़ुफ़िया एजेंसी आईएसआई द्वारा आतंकवादियों की पौध को तैयार किया जाता है और इस काम में उसके द्वारा दिये गये डालरों का भी उपयोग किया जाता है। फिर भी वह पाकिस्तान उसका सबसे प्यारा देश बना हुआ है। इस बात को भी भूला नहीं जा सकता कि यह अमेरिका ही है जिसने ओसामा बिन लादेन और तालिबान को पैदा किया था और उन्हें पाला-पोसा था। इस तरह आतंकवाद के खिलाफ़ अमेरिका और भारत की 'लड़ाई' एक फर्जी और जनता को धोखा देने की लड़ाई है।

- मनोज कुमार झा